# भारतीय दर्शन का सिद्धांतः एक विवेचना

Dr Mahipal*

*Assistant Block Research Coordinator(ABRC)*
*G.S.S. School Pabanawa, Block Pundri, District Kaithal, Haryana, India*

**Email ID**: *drmahipaljadaula@gmail.com*

**Accepted**: 03.01.2022 **Published**: 05.02.2022

**मुख्य शब्दः** भारतीय दर्शन, सिद्धांत।

## शोध आलेख सार

*भारत में 'दर्शन' उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्व का ज्ञान हो सके। भारतीय दर्शन किस प्रकार और किन परिस्थितियों में अस्तित्व में आया, कुछ भी प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना स्पष्ट है कि उपनिषद काल में दर्शन एक पृथक शास्त्र के रूप में विकसित होने लगा था।*

*तत्त्वों के अन्वेषण की प्रवृत्ति भारतवर्ष में उस सुदूर काल से है, जिसे हम 'वैदिक युग' के नाम से पुकारते हैं। ऋग्वेद के अत्यन्त प्राचीन युग से ही भारतीय विचारों में द्विविध प्रवृत्ति और द्विविध लक्ष्य के दर्शन हमें होते हैं। प्रथम प्रवृत्ति प्रतिभा या प्रज्ञामूलक है तथा द्वितीय प्रवृत्ति तर्कमूलक है। प्रज्ञा के बल से ही पहली प्रवृत्ति तत्त्वों के विवेचन में कृतकार्य होती है और दूसरी प्रवृत्ति तर्क के सहारे तत्त्वों के समीक्षण में समर्थ होती है। अंग्रेजी शब्दों में पहली की हम 'इन्ट्यूशनिस्टिक' कह सकते हैं और दूसरी को रैशनलिस्टिक। लक्ष्य भी आरम्भ से ही दो प्रकार के थे–धन का उपार्जन तथा ब्रह्म का साक्षात्कार। प्रज्ञामूलक और तर्क–मूलक प्रवृत्तियों के परस्पर सम्मिलन से आत्मा के औपनिषदिष्ठ तत्त्वज्ञान का स्फुट आविर्भाव हुआ। उपनिषदों के ज्ञान का पर्यवसान आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को सिद्ध करने वाले प्रतिभामूलक वेदान्त में हुआ।*

*भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने दूर–दूर के मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हेंने पवित्र, नित्य–शुद्ध–बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धारा को लोग* ***दर्शन*** *के नाम से पुकारते हैं। अन्वेषकों का विचार है कि इस शब्द का वर्तमान अर्थ में सबसे पहला प्रयोग वैशेषिक दर्शन में हुआ।*

**पहचान निशान**

**प्रस्तावना**

वेदों में जो आधार तत्त्व बीज रूप में बिखरे दिखाई पड़ते थे, वे ब्राह्मणों में आकर कुछ उभरे; परन्तु वहाँ कर्मकाण्ड की लताओं के प्रतानों में फँसकर बहुत अधिक नहीं बढ़ पाये। आरण्यकों में ये अंकुरित होकर उपनिषदों में खूब पल्लवित हुए। दर्शनों का विकास जो हमें उपनिषदों में हमें दृ ष्टिगोचर होता है, आलोचकों ने उसका श्रीगणेश लगभग दौ सौ वर्ष ईसा पूर्व स्थिर किया है। महात्मा बुद्ध से यह प्राचीन हैं। इतना ही नहीं विद्वानों ने सांख्य, योग और मीमांसा को भी बुद्ध से प्राचीन माना है। संभव है कि ये दर्शन वर्तमान रूप में उस समय न हों, तथापि वे किसी रूप में अवश्य विद्यमान थे। वैशेषिकदर्शन भी शायद बुद्ध से प्राचीन ही है; क्योंकि जैसा आज के युग में न्याय और वैशेषिक समान तन्त्र समझे जाते हैं, उसी प्रकार पहले पूर्व मीमांस और वैशेषिक समझे जाते थे। बौद्धदर्शन पद्धति का आविर्भाव ईसा से पूर्व दो सौ वर्ष माना जाता है, परन्तु जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन से भी प्राचीन ठहरता है। इसकी पुष्टि में यह प्रमाण दिया जाता है कि प्राचीन जैन दर्शनों में न तो बुद्ध दर्शन और न किसी हिन्दू दर्शन का ही खण्डन उपलब्ध होता है। महावीर स्वामी, जो जैन सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं, वे भी बुद्ध से प्राचीन थे। अतएव जैन दर्शन का बुद्ध दर्शन से प्राचीन होना युक्तियुक्त अनुमान है।

भारतीय दर्शनों का ऐतिहासिक क्रम निश्चित करना कठिन है। इन सब भिन्न–भिन्न दर्शनों का लगभग साथ ही साथ समान रूप से प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ है। इधर–उधर तथा बीच में भी कई कड़ियाँ छिन्न–भिन्न हो गई हैं। अत: जो कुछ शेष है, उसी का आधार लेकर चलना है। इस क्रम में शुद्ध ऐतिहासिकता न होने पर भी क्रमिक विकास की श्रृंखला आदि से अन्त तक चलती रही है। इसलिए प्रायः विद्वानों ने इसी क्रम का अनुसरण किया है।

**सामान्य विशेषताएँ**

भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों की चर्चा करते समय हम लोगों ने देखा है कि उन्हें साधारणत: आस्तिक और नास्तिक वर्गों में रखा जाता है। वेद को प्रामाणिक मानने वाले दर्शन को 'आस्तिक' तथा वेद को अप्रमाणिक मानने वाले दर्शन को 'नास्तिक' कहा जाता है। आस्तिक दर्शन छः हैं जिन्हें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त कहा जाता है। इनके विपरीत चावार्क, बौद्ध और जैन दर्शनों को 'नास्तिक दर्शन' के वर्ग में रखा जाता है। इन दर्शनों में अत्याधिक आपसी विभिन्नता है। किन्तु मतभेदों के बाद भी इन दर्शनों में सर्वदृ निष्ठता का पुट है। कुछ सिद्धांतों की प्रमाणिकता प्रत्येक दर्शन में उपलब्ध है। इस साम्य का कारण प्रत्येक दर्शन का विकास एक ही भूमिकृभारतकृमें हुआ, ये कहा जा सकता है। एक ही देश में पनपने के कारण इन दर्शनों पर भारतीय प्रतिभा, निष्ठा और संस्कृति की छाप अमिट रूप से पड़ गई है। इस प्रकार भारत के विभिन्न दर्शनों में जो साम्य दिखाई पड़ते हैं, उन्हें "भारतीय दर्शन की सामान्य विशेषताएँ" कहा जाता है। ये विशेषताएँ भारतीय विचारधारा के स्वरूप को पूर्णत: प्रकाशित करने में समर्थ हैं। इसीलिये इन विशेषताओं का भारतीय दर्शन में अत्याधिक महत्त्व है। आब हम लोग एक एक कर इन विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

1. **भारतीय दर्शन का प्रमुख लक्षण**: यहाँ के दार्शनिकों ने संसार को दुख:मय माना है। दर्शन का विकास ही भारत में अध्यात्मिक असंतोष के कारण हुआ है। रोग, मृत्यु, बुढ़ापा, ऋण आदि दु:खों के फलस्वरूप मानव मन में सदा अशांति का निवास रहता है। बुद्ध का प्रथम आर्य सत्य विश्व को दु:खात्मक बतलाता है। उन्होंने रोग, मृत्यु, बुढ़ापा, मिलन, वियोग आदि की अनुभूतियों को दु:खात्मक कहा है। जीवन के हर पहलू में मानव दु:ख का ही दर्शन करता है। उनका यह कहना कि दुखियों ने जितने आँसू बहाये हैं, उसका पानी समुद्र जल से भी अधिक है, जगत के प्रति उनका दृष्टिकोण दर्शाता है। बुद्ध के प्रथम आर्यदृसत्य से सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, शंकर, रामानुज, जैन आदि सभी दर्शन सहमत हैं। सांख्य ने विश्व को दु:ख का सागर कहा है। विश्व में तीन प्रकार के दु:ख हैं — आध्यात्मिक, आधि–भौतिक और आधि–दैविक। आध्यात्मिक दु:ख शारीरिक और मानसिक दु:खों का दूसरा नाम है। आधि–भौतिक दु:ख बाह्य जगत के प्राणियों से, जैसे पशु और मनुष्‍ से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के दु:ख के उदाहरण चोरी, डकैती, हत्या आदि कुकर्म हैं। आधिवैदिक दु:ख वे दु:ख हैं जो अप्राकृतिक शक्तियों से प्राप्त होते हैं। भूत, प्रेत, बाढ़, अकाल, भूकम्प आदि से प्राप्त दु:ख इसके उदाहरण हैं। भारतीय दर्शनों ने विश्व की सुखात्मक अनुभूति को भी दु:खात्मक कहा है। उपनिषद और गीता जैसे दार्शनिक साहित्यों में विश्व की अपूर्णता की ओर संकेत किया गया है। इस प्रकार यहाँ के प्रत्येक दार्शनिक ने संसार का क्लेशमय चित्र उपस्थित किया है। संसार के सुखों को वास्तविक सुख समझना अदूरदर्शिता है।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय दर्शन को निराशावादी (Pessimistic) कहा है। निराशावादी उस सिद्धांत को कहते हैं जो विश्व को विषादमय चित्रित करता है। निराशावाद के अनुसार संसार में आशा नहीं है। विश्व अंधकारमय एवं दु:खात्मक है। निराशावाद का प्रतिकूल सिद्धांत 'आशावाद' है। आशा मन की एक प्रवृत्ति है जो विश्व को सुखात्मक समझती है। अब हमें देखना है कि यूरोपीय विद्वानों का यह मत कि भारतीय दर्शन निराशावाद से ओत–प्रोत है, ठीक है अथवा यह एक दोषारोपण मात्र है।

आरम्भ में यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय दर्शन को निराशावादी कहना भ्रांतिमूलक है। भारतीय दर्शन का सिंहावलोकन यह प्रमाणित करता है कि भारतीय विचारधारा में निराशावाद का खंडन हुआ है।

यहाँ के सभी दार्शनिक विश्व को दु:खमय मानते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु वे विश्व के दु:खों को देखकर मौन नहीं हो जाते, बल्कि वे दु:खों का कारण जानने का प्रयास करते हैं। प्रत्येक दर्शन यह आश्वासन देता है कि मानव अपने दु:खों का निरोध कर सकता है। दु:ख निरोध को भारत में इसे मोक्ष कहा जाता है। चार्वाक को छोड़ कर यहाँ का प्रत्येक दार्शनिक मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य मानता है। सच पूछा जाय तो भारत में मोक्ष को पाने के लिये ही दर्शन का विकास हुआ है। मोक्ष ऐसी अवस्था है जहाँ दु:खों का पूर्णतया अभाव होता है। कुछ दार्शनिकों ने मोक्ष को आनन्दमय अवस्था कहा है। यहाँ के दार्शनिक केवल मोक्ष के स्वरूप का ही वर्णन कर चुप नहीं हो जाते हैं, बल्कि मोक्ष पाने कि लिये प्रयत्न करते

हैं। प्रत्येक दर्शन में मोक्ष को पाने के लिये मार्ग का निर्देश किया गया है। बुद्ध के कथानानुसार एक मानव मोक्ष को 'अष्टांगिक' मार्ग पर चलकर पा सकता है। अष्टांगिक मार्ग के आठ अंग हैं — सम्यक, दृष्टि, सम्यक, संकल्प, सम्यक, वाक, सम्यक आजीविका, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि। जैन–दर्शन में मोक्ष को पाने के लिये सम्यक दर्शन (right faith), सम्यक ज्ञान (right knowledge) और सम्यक चरित्र (right conduct) नामक त्रिमार्ग का निर्देश किया गया है। सांख्य और शंकर के अनुसार मानव, ज्ञान के द्वारा अर्थात वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को जान कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। मीमांसा के अनुसार मानव कर्म के द्वारा मोक्षावस्था को प्राप्त कर सकता है। भारतीय दर्शन में मोक्ष और मोक्ष के मार्ग की अत्याधिक चर्चा है जिसके कारण भारतीय दर्शन को निराशावादी कहना भूल है। प्रो० मैक्समूलर ने ठीक कहा है "चूँकि भारत के सभी दर्शन दु:खों को दूर करने के लिये अपनी योग्यता प्रदर्शित करते हैं, इसलिये उन्हें साधारण अर्थ में निराशावादी कहना भ्रामक है।"'

निराशावाद का अर्थ है "कर्म को छोड़ देना"! उसी दर्शन को निराशावादी कहा जा सकता है जिसमें कर्म से पलायन का आदेश दिया गया हो। कर्म करने से आशा का संचार होता है। कर्म के आधार पर ही मानव अपने भविष्य में जीवन का सुनहरा सपना देखता है। यदि निराशावाद का यह अर्थ लिया जाय, तब भारतीय विचारधारा को निराशावादी को कहना गलत होगा। यहाँ का प्रत्येक दार्शनिक कर्म करने का आदेश देता है। जीवन के कर्मों से भागने की ज़रा भी प्रवृत्ति भारतीय विचारकों को मान्य नहीं है। शंकर का, जिसकी मृत्यु अल्पावस्था में हुई, सारा जीवन कर्म का अनोखा उदाहरण उपस्थित करता है। महात्मा बुद्ध का जीवन भी कर्ममय रहा है।

भारतीय दर्शन को निराशावादी इसलिये भी नहीं कहा जा सकता है कि यह अध्यात्मवाद से ओत–प्रोत है। अध्यात्मवादी दर्शन को निराशावादी कहना गलत है। विलियम जेम्स के शब्दों में अध्यात्मवाद उसे कहते हैं जो जगत में शाश्वत नैतिक–व्यवस्था मानता है जिससे प्रचुर आशा का संचार होता है।

भारतीय दर्शन के निराशावाद का विरोध भारत का साहित्य करता है। भारत के समस्त सम्सामयिक नाटक सुखान्त है। जब भारत के साहित्य में आशावाद का संकेत है, तो फिर भारतीय दर्शन को निराशावादी कैसे कहा जा सकता है? आखिर भारतीय दर्शन को निराशावादी क्यों कहा जाता है? भारत का दार्शनिक विश्व की वस्तु–स्थिति को देखकर विकल हो जाता है। इस अर्थ में वह निराशावादी है। परन्तु वास्तव में वह निराश नहीं हो पाता। यह इससे प्रमाणित होता है कि निराशावाद भारतीय दर्शन का आरम्भ है, अन्त नहीं (Pessimism in Indian Philosophy is only initial and not final)। भारतीय दर्शन का आरंभ निराशा में होता है परंतु उसका अंत आशा में होता है। डॉ० राधाकृष्णन ने कहा है, "भारतीय दार्शनिक वहाँ तक निराशावादी है जहाँ तक वे विश्व दृ व्यवस्था को अशुभ और मिथ्या मानते हैं, परन्तु जहाँ तक इन विषयों से छुटकारा पाने का सम्बन्ध है, वे आशावादी हैं।" इस प्रकार हम देखते हैं कि

निराशावाद भारतीय दर्शन का आधार (premise) है, निष्कर्ष नहीं।

देवराज और तिवारी ने भारतीय दर्शन के निराशावाद की तुलना एक वियोगिनी से की है, जो अपने प्रियतम से अलग है परन्तु उसे अपने प्रियतम के आने का दृढ़ विश्वास है। उसी प्रकार भारतीय दर्शन आरम्भ में निराशावादी है, परन्तु इसका अंत आशावाद में होता है। दर्शन का आरम्भ दुःख से होता है, परन्तु यहाँ के दार्शनिकों को दुःख से छुटकारा पाने पर पूर्ण विश्वास है।

भारतीय दर्शन आरम्भ में भी निराशावादी इसलिये है कि निराशावाद के अभाव में आशावाद का मूल्यांकन करना कठिन है। प्रो० बोसांके ने कहा है, ''मैं आशावाद में विश्वास करता हूँ, परन्तु साथ ही कहता हूँ कि कोई भी आशावाद तब तक सार्थक नहीं है जब तक उसमें निराशावाद का संयोजन न हो।' जी० एच० पामर (G.H. Palmer) नामक प्रख्यात अमेरिकन अध्यापक ने निराशावाद की सराहना करते हुए तथा आशावाद की निन्दा करते हुए इन शब्दों का प्रयोग किया है, 'आशावाद नैराश्यवाद से हेय प्रतीत होता है। निराशावाद विपत्तियों से हमें सावधान कर देता है, परन्तु आशावाद झूठी निश्चिंतताओं को प्रेश्रय देता है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय दर्शन का आरम्भ निराशावाद में होना प्रमाण–पुष्ट है, क्योंकि वह आशावाद को सार्थक बनाता है। अतः युरोपीय विद्वानों का यह मत कि भारतीय दर्शन पूर्णतया निराशावादी है, भ्रान्तिमूलक प्रतीत होता है।

**2. भारतीय दर्शन की दूसरी विशेषता:** चार्वाक को छोड़कर यहाँ का प्रत्येक दार्शनिक आत्मा की सत्ता में विश्वास करता है। उपनिषद से लेकर वेदांत तक आत्मा की खोज पर ज़ोर दिया गया है। यहाँ के ऋषियों का मूल मंत्र है आत्मानं विद्धि (Know thyself)। आत्मा में विश्वास करने के फलस्वरूप भारतीय दर्शन अध्यात्मवाद का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ के दार्शनिकों ने साधारणतया आत्मा को अमर माना है। आत्मा और शरीर में यह मुख्य अन्तर है कि आत्मा अविनाशी है जबकि शरीर का विनाश होता है। आत्मा के सम्बन्ध में विभिन्न मत भारतीय दार्शनकों ने उपस्थित किए हैं।

चार्वाक ने आत्मा और शरीर को एक दूसरे का पर्याय माना है। चौतन्यविशिष्ट देह को ही चार्वाकों ने आत्मा कहा है। आत्मा शरीर से पृथक नहीं है। शरीर की तरह आत्मा भी विनाशी है, क्योंकि आत्मा वस्तुतः शरीर ही है। चार्वाक के इस मत को 'देहात्मवाद' कहा जाता है। सदानन्द ने 'वेदान्तदृ सार' में चार्वाक द्वारा प्रमाणित आत्मा के सम्बन्ध में चार विभिन्न मतों का उल्लेख किया है।' कुछ चार्वाकों ने आत्मा को शरीर कहा है। कुछ चार्वाकों ने आत्मा को ज्ञानेन्द्रिय के रूप में माना है। कुछ चार्वाकों ने कर्मेन्द्रिय को आत्मा कहा है। कुछ चार्वाकों ने मनस को आत्मा कहा है। चार्वाकों ने आत्मा के अमरत्व का निषेध कर भारतीय विचारधारा में निरूपित आत्मा के विचार का खंडन किया है। चार्वाक के आत्मादृसमबन्धी विचार को भौतिकवादी मत कहा जाता है।

बुद्ध ने क्षणिक आत्मा की सत्ता स्वीकार की है। उनके अनुसार आत्मा चेतन का प्रवाह ( stream of consciousness) है। उनका यह विचार विलियम जेम्स के आत्मा सम्बन्धी विचार का प्रतिरूप है। बुद्ध ने वास्तविक आत्मा (real self) को भ्रम

कहकर व्यवहारवादी आत्मा (empirical self) को माना जो निरंतर परिवर्तनशील रहता है। बुद्ध के आत्मदृविचार को अनुभववादी (empirical) मत कहा जाता है।

जैनों ने जीवों को चौतन्ययुक्त कहा है। चेतना आत्मा में निरंतर विद्यमान रहती है। आत्मा में चेतन्य और विस्तार दोनों समाविष्ट है। आत्मा ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। आत्मा की शक्ति अनंत है। उसमें चार प्रकार की पूर्णता कृ–जैसे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द विद्यमान है।

आत्मा के सम्बन्ध में न्याय और वैशेषिक ने जो मत दिया है उसे यथार्थवादी मत (realistic view) कहा जाता है। न्याय–वैशेषिक ने आत्मा को स्वभावतः अचेतन माना है। आत्मा में चेतना का संचार तभी होता है जब आत्मा का सम्पर्क मन, शरीर और इन्द्रियों से होता है। इस प्रकार चेतना को इन दर्शनों में आत्मा का आगुन्तक गुण (accidental property) कहा गया है। मोक्षावस्था में आत्मा चौतन्य–गुण से रहित होता है। आत्मा को ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता माना गया है। मीमांसा भि न्याय–वैशेषिक की तरह चेतना को आत्मा का आगुन्तक धर्म मानती है। मीमांसा दर्शन में आत्मा को नित्य एवं विभु माना गया है।

सांक्य ने आत्मा को चौतन्य स्वरूप माना है। चेतना आत्मा का मूल लक्षण (essential property) है। चौतन्य के अभाव में आत्मा की कल्पना भी असंभव है। आत्मा निरंतर ज्ञाता रहता है। वह ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। सांख्य ने आत्मा को अकर्ता कहा है। आत्मा आनन्ददृविहीन है, क्योंकि आनन्द गुण का फल है और आत्मा त्रिगुणातीत है।

शंकर ने भी चेतना को आत्मा का मूल स्वरूप लक्षण माना है। उन्होंने आत्मा को 'सच्चिदानन्द' ( सत्+चित+आनन्द ) कहा है। आत्मा न ज्ञाता है और न ज्ञान का विषय है। जहाँ तक आत्मा की संख्या का सम्बन्ध है, शंकर को छोड़कर सभी दार्शनिकों ने आत्मा को अनेक माना है। शंकर एक ही आत्मा को सत्य मानते हैं। न्याय–वैशेषिक दो प्रकार की आत्माओं को मानता है—(१) जीवात्मा, (२) परमात्मा। जीवात्मा अनेक है, परन्तु परमात्मा एक है।

**3. भारतीय दर्शन का तीसरा साम्य:** 'कर्म सिद्धान्त' में विश्वास कहा जा सकता है। चार्वाक को छोड़कर भारत के सभी दर्शन चाहे वह वेद विरोधी हों अथवा वेदानुकूल हों, कर्म के नियम को मान्यता प्रदान करते हैं। इस प्रकार कर्म–सिद्धान्त (Law of Karma) को छः आस्तिक दर्शनों ने एवं दो नास्तिक दर्शनों ने अंगीकार किया है। कुछ लोगों का मत है कि कर्म–सिद्धान्त (Law of Karma) में विश्वास करना भारतीय विचारधारा के अध्यात्मवाद का सबूत है।

कर्मदृसिद्धान्त (Law of Karma) का अर्थ है "जैसे हम बोते हैं वैसा ही हम काटते हैं।" इस नियम के अनुकूल शुभ कर्मों का फल शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल अशुभ होता है। इसके अनुसार 'कृत प्रणाश' अर्थात किये हुए कर्मों का फल नष्ट नहीं होता है तथा 'अकृतम्यु पगम'  अर्थात बिना किये हुए कर्मों के फल भी नहीं प्राप्त होते हैं, हमें सदा कर्मों के फल प्राप्त होते हैं। सुख और दुःख क्रमश शुभ और अशुभ कर्मों के अनिवार्य फल माने गये हैं। इस प्रकार कर्मदृसिद्धान्त, 'कारण नियम' है जो नैतिकता के क्षेत्र में काम करता है। जिस प्रकार

भौतिक क्षेत्र में निहित व्यवस्था की व्याख्या कर्म–सिद्धान्त करता है। इसीलिये कुछ विद्वानों ने 'कर्म–सिद्धान्त' को विश्‍व में निहित व्यवस्था की दार्शनिक व्याख्या कहा है।

कर्म–सिद्धान्त में आस्था रखनेवाले सभि दार्शनिकों ने माना है कि हमारा वर्तमान जीवन अतीत जीवन के कर्मों का फल है तथा भविष्य जीवन वर्तमान जीवन के कर्मों का फल होगा। इस प्रकार अतीत, वर्तमान और भविष्य जीवनों को कारण–कार्य श्रृंखला में बाँधा गया है। यदि हम दुःखी हैं तब इसका कारण हमारे पूर्व जीवन के कर्मों का फल है। यदि हम दूसरे जीवन को सुखमय बनाना चाहते हैं तो हमारे लिये अपने वर्तमान जीवन में उसके लिये प्रयत्नशील रहना परमावश्यक है। अतः प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। कर्म–सिद्धान्त सर्वप्रथम बीज के रूप में 'वेद–दर्शन' में सन्निहित मिलता है। वैदिक काल के ऋषियों को नैतिक व्यवस्था के प्रति श्रद्धा की भावना थी। वे नैतिक व्यवस्था को ऋत (Rta) कहते थे जिसका अर्थ होता है 'जगत की व्यवस्था'। 'जगत की व्यवस्था' के अन्दर नैतिक व्यवस्था भी समाविष्ट थी। यह ऋत का विचार उपनिषद दर्शन में कर्मवाद का रूप ले लेता है। न्याय–वैशेषिक दर्शन में कर्म–सिद्धान्त को 'अदृष्ट' (Adrsta) कहा जाता है, क्योंकि यह दृष्टिगोचर नहीं होता। विश्‍व की समस्त वस्तुएँ, यहाँ तक की परमाणु भी, इस नियम से प्रभावित होते हैं। मीमांसादृदर्शन में कर्म–सिद्धान्त को 'अपूर्व' कहा जाता है। न्याय–वैशिषेक दर्शन में 'अदृष्ट का संचालन ईश्‍वर के अधीन है। 'अदृष्ट' अचेतन होने के फलस्वरूप स्वयं फलवान नहीं होता है। मीमांसा का विचार न्याय वैशिषेक के विचार का विरोध करता है, क्योंकि मीमांसा मानती है कि कर्म–सिद्धान्त स्वचालित है। इसे संचालित करने के लिये ईश्‍वर की कोई आवश्यकता नहीं है। भारत के सभी दार्शनिकों ने कर्म–सिद्धान्त का क्षेत्र सीमित माना है। कर्म सिद्धान्त सभी कर्मों पर लागू नहीं होता है। यह उन्हीं कर्मों पर लागू होता है जो राग, द्वेष एवं वासना के द्वारा संचालित होते हैं। दूसरे शब्दों में वैसे कर्म जो किसी उद्देश्य की भावना से किये जाते हैं, कर्म–सिद्धांत के दायरे में आते हैं। इसके विपरीत वैसे कर्म जो निष्काम किये जाते हैं, कर्म–सिद्धांत द्वारा शासित नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों में निष्काम कर्म कर्म–सिद्धांत से स्वतंत्र है। निष्काम कर्म भूँजे हुए बीज के समान है जो फल देने में असमर्थ रहते हैं। इसीलिए निष्काम कर्म पर यह सिद्धांत लागू नहिं होता।

कर्म शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है। साधारणत: कर्म शब्द का प्रयोग 'कर्म–सिद्धांत' के रूप में होता है। इस प्रयोग के अतिरिक्त कर्म का एक दूसरा भी प्रयोग है। कर्म कभी–कभी शक्ति रूप में प्रयुक्त होता है जिसके फलस्वरूप फल की उत्पत्ति होती है। इस दृष्टिकोण से कर्म तीन प्रकार के माने गये हैः

- संचित कर्म
- प्रारब्ध कर्म
- संचीयमान कर्म

संचित कर्म उस को कहते हैं जो अतीत कर्मों से उत्पन्न होता है परन्तु जिसका फल मिलना अभी शुरू नहीं हुआ है। इस कर्म का सम्बन्ध अतीत जीवन से है। प्रारब्ध कर्म वह कर्म है जिसका फल मिलना अभी शुरू हो गया है। इसका सम्बन्ध अतीत जईवन से है।

वर्तमान जीवन के कर्मों को, जिनका फल भविष्य में मिलेगा, संचीयमान कर्म कहा जाता है। कर्म–सिद्धान्त के विरुद्ध कहा जाता है कि यह ईश्वारवाद (Theism) का खंडन करता है। ईश्वर्वाद के अनुसार ईश्वर विश्व का सृष्टा है। ईश्वर ने मानव को सुखी एवं दुःखी बनाया है। परन्तु कर्म–सिद्धांत मनुष्य के सुख और दुःख का करण स्वंय मनुष्य को बतलाकर ईश्वरवादी विचार का विरोध करता है।

कर्म–सिद्धान्त ईश्वर के गुणों का भी खंडन करता है। ईश्वर को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ , दयालु, इत्यादि कहा जाता है। परन्तु कर्म–सिद्धान्त के लागू होने के कारण ईश्वर चाहने पर भी एक मनुष्य को उसके कर्मों के फल से वंचित नहीं करा सकता। वह व्यक्ति जो अशुभ कर्म करता है, किसी प्रकार भी ईश्वर की दया से लाभान्वित नहीं हो सकता। इस प्रकार ईश्वर की पूर्णता का कर्म–सिद्धान्त विरोध करता है। कर्म–सिद्धान्त के विरुद्ध ये दूसरा आक्षेप है।

कर्म–सिद्धान्त के विरुद्ध तीसरा आक्षेप यह कहकर किया जाता है कि यह सिद्धान्त सामाजिक सेवा में शिथिलता उत्पन्न करता है। किसी असहाय या पीड़ित की सेवा करना बेकार है, क्योंकि वह तो अपने पूर्ववर्ती जीवन के कर्मों का फल भोगता है। इस आक्षेप के विरुद्ध कहा जा सकता है कि यह आक्षेप उन्हीं व्यक्तियों के द्वारा पेश किया जाता है जो अपने कर्तव्य से भागना चाहते हैं।

कर्म–सिद्धान्त के विरुद्ध चौथा आक्षेप यह किया जाता है कि कर्मवाद भाग्यवाद (Fatalism) को मान्याता देता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोग रहा है। अतः किसी प्रकार के सुधार की आशा रखना मूर्खता है।

परन्तु आलोचकों का यह कथन निराधार है। कर्म–सिद्धान्त, जहाँ तक वर्तमान जीवन का सम्बन्ध है, भाग्यवाद को प्रश्रय देता है, क्योंकि वर्तमान जीवन अतीत जीवन के कर्मों का फल है। परन्तु जहाँ तक भविष्य जीवन का सम्बन्ध है यह मनुष्य को वर्तमान शुभ कर्मों के आधार पर भविष्य जीवन का निर्माण करने का अधिकार प्रदान करता है। इस प्रकार कर्म–सिद्धान्त भाग्यवाद का खंडन करता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद कर्म–सिद्धान्त का भारतीय विचार–धारा में अत्याधिक महत्व है। इसकी महत्ता का निरूपण करना पर्मावश्यक है।

कर्म–सिद्धान्त की पहली महत्ता यह है कि यह विश्व के विभिन्न व्यक्तियों कि जीवन में जो विषमता है उसका कारण बतलाता है। सभी व्यक्ति समान परिस्थिति में साधारणतया जन्म लेते हैं। फिर भी उनके भाग्य में अन्तर है। कोई व्यक्ति धनवान है, तो कोई व्यक्ति निर्धन है। कोई विद्वान है तो कोई मूर्ख है। आखिर, इस विषमता का क्या करण है? इस विषमता का करण हमें कर्म–सिद्धान्त बतलाता है। जो व्यक्ति इस संसार में सुखी है वह अतीत जीवन के शुभ–कर्मों का फल पा रहा है। इस के विपरीत जो व्यक्ति दुःखी है वह भी अपने पूर्व जीवन के कर्मों का फल भोग रहा है।

कर्म–सिद्धान्त की दूसरी महत्ता यह है कि इसमें व्यवहारिकता है। कर्म–सिद्धान्त के अनुसार मानव के शुभ या अशुभ सभी कर्मों पर निर्णय दिया जाता है। यह सोचकर कि अशुभ कर्म का फल अनिवार्यतः अशुभ होता है मानव बुर कर्म करने में अनुत्साहित हो जाता है। अशुभ कर्म के सम्पादन में

मानव का अन्तः करण विरोध करता अन्तःकरण विरोध करता है। इस प्रकार कर्म–सिद्धान्त व्यक्तियों को कुकर्मों से बचता है।

कर्म–सिद्धान्त की तीसरी महत्ता यह है कि यह हमारी कमियों के लिये हमें सान्तवना प्रदान करता है। यह सोचकर कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्व–जीवन के कर्मों का फल पा रहा है, हम अपनी कमियों के लिये किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं कोसते, बल्कि स्वयं अपने को उत्तर्दायी समझते हैं।

कर्म–सिद्धान्त की अन्तिम विशेषता यह है कि यह मानव में आशा का संचार करता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। वर्तमान जीवन के शुभ कर्मों के द्वारा एक मानव भविष्य–जीवन को सुनहला बना सकता है।

## उपसंहार

भारतीय–दर्शन ने वैश्विक मानवता को निष्काम भाव से कर्म–युजित रहने का निर्मल निर्देश दिया है, जो शाश्वत प्रासंगिक है। आधुनिक युग में, व्यक्ति को 'करणीय कर्म' की शिक्षा प्रदान करना अत्यावश्यक है, क्योंकि मानव सद्पथ से विचलित हो गया है।

विश्व में मानवीय मूल्यों एवं नैतिकता का शनैः शनैः ह्रास हो रहा है। भौतिकता के अंधानुकरण में मानव स्वकर्त्तव्य–कर्म के प्रति उदासीन होता जा रहा है, अतः प्राच्य–पुनीत भारतीय दर्शन की शरण, तद निर्देशानुसार एवं संस्कृत–संस्कृति की अनुरक्षण–सरंक्षण से ही विश्व–कल्याण संभव है।

## सन्दर्भ


1. धर्मदर्शन की रूपरेखा (गूगल पुस्तक; लेखक – हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा)
2. भारतीय दर्शन – सरल परिचय (गूगल पुस्तक ; लेखक – देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय)
3. हमारा जीवन दर्शन Archived 2015–10–11 at the Wayback Machine
4. भारतीय दर्शन (गूगल पुस्तक; लेखिका – शोभा निगम)
5. षड्दर्शन
6. भारतीय वैदिक दर्शन (आनलाइन पुस्तक)
7. भारतीय दर्शन – आलोचन एवं अनुशीलन (गूगल पुस्तक; लेखक – चन्द्रधर शर्मा)
8. भारतीय दर्शन Archived 2010–06–30 at the Wayback Machine (भारत विद्या)
9. नास्तिक धर्म और दर्शन (वेबदुनिया)